जनसत्ता

घाटी में चुनाव

जम्मू-कश्मीर का विशेष दर्जा हटने के बाद पहली बार कोई चुनाव हुआ और उसमें जिस तरह लोगों ने उत्साहजनक हिस्सेदारी की, उससे वहां जल्दी ही अमन बहाली की उम्मीद जगती है। जम्मू-कश्मीर में प्रखंड विकास परिषद के चुनाव हुए। उसकी तीन सौ दस सीटों में से दो सौ सत्रह पर निर्दलीय प्रत्याशियों ने विजय हासिल की, जबकि इक्यासी पर भाजपा के उम्मीदवारों ने जीत दर्ज की। उल्लेखनीय है कि इस चुनाव में नब्बे प्रतिशत से अधिक मतदान हुए। श्रीनगर में सौ फीसद मतदान हुआ। यह इस बात का संकेत है कि वहां के लोग लोकतांत्रिक प्रक्रिया में लौट रहे हैं। जब प्रखंड विकास परिषद चुनावों की घोषणा हुई, तब पीडीपी और नेशनल कान्फ्रेंस ने इसके बहिष्कार की घोषणा कर दी थी। कांग्रेस ने चुनाव मैदान में उतरने की घोषणा की थी, मगर वह भी आखिरी दिनों में यह कह कर अलग हट गई कि घाटी में नेता नजरबंद हैं, इसलिए उसे चुनाव की तैयारियां करने का अपेक्षित समय नहीं मिल पाया है। इस तरह मैदान में अकेली भाजपा रह गई थी। उसके प्रत्याशियों के सामने बड़ी संख्या में निर्दलीय उम्मीदवार मैदान में उतरे थे। स्वाभाविक ही जीतने वालों में निर्दलीय प्रत्याशियों की संख्या अधिक है। मगर इस चुनाव की अहमियत इस बात में नहीं है कि किस राजनीतिक दल ने कितनी कामयाबी हासिल की और किसे पटखनी खानी पड़ी। इसे जम्मू-कश्मीर में लोकतांत्रिक प्रक्रिया की बहाली के तौर पर देखा जाना चाहिए।

अनुच्छेद तीन सौ सत्तर हटने के बाद पूरे सूबे में कर्फ्यू लगा दिया गया था। सभी संचार सुविधाएं बंद थीं। विपक्षी नेताओं को उनके घरों से बाहर निकलने, राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा लेने से रोक दिया गया था। इसे लेकर विपक्षी दल लगातार संसद में और उसके बाहर सत्ता पक्ष पर हमलावर थे। उधर पाकिस्तान भी अंतरराष्ट्रीय मंचों पर इस फैसले को चुनौती दे रहा था। कर्फ्यू लंबा खिंचने लगा, तो आरोप लगाए जाने लगे कि सरकार घाटी के लोगों के मानवाधिकारों का हनन कर रही है। एक तरह से पूरी घाटी को जेलखाने में तब्दील कर दिया गया है। तब चरणबद्ध तरीके से जम्मू-कश्मीर से कर्फ्यू हटाने और विपक्षी नेताओं को रिहा करने की प्रक्रिया शुरू हुई थी। प्रखंड विकास परिषद के चुनाव का एलान किया गया था। इस तरह इन चुनाव नतीजों ने एक तरह से विपक्षी दलों की इस दलील को खारिज कर दिया है कि घाटी में वैसी स्थिति नहीं है, जैसा वे प्रचारित कर रहे हैं। लोगों के मन में लोकतांत्रिक प्रक्रिया में लौटने को लेकर उत्साह है।

इन चुनाव नतीजों से स्वाभाविक ही केंद्र सरकार को बल मिला है। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर जो प्रचारित किया जा रहा था कि कश्मीरी लोगों के मौलिक अधिकारों का हनन हो रहा है, वह एक तरह से गलत साबित हुआ है। अब सरकार सप्रमाण कह सकेगी कि जब वहां के लोगों ने इतने उत्साह से चुनाव में शिरकत की, तो फिर उनके अधिकारों का किस तरह हनन हो रहा है। चुनाव लोगों के अपने मत व्यक्त करने का अवसर होते हैं। लंबे समय से हुर्रियत के नेता कश्मीरियों को चुनाव प्रक्रिया से दूर रहने की नसीहत देते रहे हैं। वे कश्मीर को अलग करने की मांग करते रहे हैं। सो, इन नतीजों से जाहिर हो गया है कि वहां के लोग इस बहकावे में नहीं आए हैं। इससे सरकार को घाटी में नए सिरे से विकास योजनाएं संचालित करने और लोकतांत्रिक प्रक्रिया की बहाली में मदद मिलेगी।

सम्मान के नाम पर

राजस्थान के सीकर जिले में कथित सम्मान के नाम पर हत्या की जैसी घटना सामने आई है, वह एक बार फिर यह दर्शाने के लिए काफी है कि प्रचारित विकास की चकाचौंध के पीछे आज भी सामाजिक विद्रूप के कई अंधेरे आसपास पल रहे हैं। सीकर के अलौंदा गांव में एक युवती वहीं के एक युवक से प्रेम संबंध में थी। इसका पता चलने पर युवती के पिता ने धोखे से बेटी के जरिए उसके प्रेमी को बुलवाया और फिर अपने साथियों के साथ मिल कर दोनों की पीट-पीट कर हत्या कर दी। निश्चित रूप से यह झूठे सम्मान को बचाने के नाम पर की गई हत्या की कोई अकेली घटना नहीं है। ऐसे वाकये अक्सर सामने आते रहे हैं। मगर इससे हर बार यही साफ होता है कि एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में मानवीय तत्त्वों के विकास और उसे एक परिपक्व रूप देने में हम किस कदर नाकाम हुए हैं।

एक पिता के लिए यह कैसे संभव हो पाता है कि अपनी जिस संतान को पैदा करने से लेकर पालन-पोषण तक के मामले में वह बेहद संवेदनशील होता है, उसकी किसी एक इच्छा या खुशी के बदले वह खुद उसे मौत के घाट उतार देता है! दो वयस्कों का प्रेम और विवाह का फैसला उनका मानवीय और संवैधानिक अधिकार है। पिता अगर उससे असहमत है तो उनके जीवन और भविष्य की जिम्मेदारी वह उन दोनों पर ही छोड़ दे सकता है। पर बेटी के अपनी मर्जी से प्रेम या विवाह कर लेने से किसी का भी सम्मान कैसे कम हो सकता है? अगर इस तरह के प्रेम या विवाह को सम्मान पर चोट के रूप में देखा जाता है, तो यह एक पिछड़ी हुई सोच का नतीजा है, जो प्रेमी जोड़े की हत्या तक कर डालने तक के रास्ते पर ले जा सकता है। अगर किसी समाज में इस तरह परंपरा देखी जाती है तो यह किसी न किसी रूप में विचार की कसौटी पर जड़ या ठहरे होने का ही सूचक है।

करीब डेढ़ महीने पहले राजस्थान की मौजूदा सरकार ने प्रेमी जोड़ों की सुरक्षा के लिए 'राजस्थान सम्मान और परंपरा के नाम पर वैवाहिक संबंधों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप का प्रतिषेध विधेयक 2019' कानून पारित किया। इस कानून के तहत जाति, समुदाय, परिवार के सम्मान के नाम पर वैवाहिक युगल में किसी को भी जान से मारने पर आरोपियों को फांसी या आजीवन कारावास और पांच लाख रुपए तक के जुर्माने की सजा देने की व्यवस्था की गई है। निश्चित रूप से यह झूठे सम्मान के नाम पर प्रेम करने वालों की हत्या या प्रताड़ना के खिलाफ एक अहम पहलकदमी है। पर यह ध्यान रखने की जरूरत है कि इस तरह के अपराध का सिरा पिछड़ी हुई और आधारहीन मानसिकता से जुड़ा होता है। इसमें लोग बेटी के अपनी मर्जी से प्रेम या विवाह करने के फैसले को जाति, धर्म या फिर परिवार के सम्मान पर चोट के रूप में देखते हैं। जबकि एक मानवीय संवेदना वाला समाज प्रेम को अपना जीवन-तत्त्व और अहम मूल्य मानेगा। इसलिए कानून की कसौटी पर सख्ती से ऐसी घटनाओं की रोकथाम के साथ-साथ ज्यादा जरूरी है कि ऐसे मसलों पर लोगों की सोच में बदलाव लाने के लिए ठोस कार्यक्रम बनाए जाएं और उन्हें सामाजिक विकास की प्राथमिकता में शुमार किया जाए। तभी प्रेम करने की वजह से हत्या जैसे शर्मनाक चलन की समस्या का स्थायी हल निकाला जा सकेगा।

कल्पमेधा

प्रकृति के कदमों के निशान पर चलो!
उसका रहस्य है धैर्य।
– इमर्सन

बदलाव के मोर्चे पर जूझती बेटियां

मोनिका शर्मा

मौजूदा समय में बेटियां शिक्षित हो रही हैं और आत्मनिर्भर भी। पर बुनियादी स्तर पर उन्हें आज भी ऐसे कई मोर्चों पर लड़ाई लड़नी पड़ रही है, जो सामाजिक-पारिवारिक ढांचे में बदलाव आए बिना नहीं जीती जा सकती। इस बदलाव में हर परिवार की भूमिका तो अहम है ही, समग्र रूप से समाज की भागीदारी भी जरूरी है। इससे ज्यादा अफसोसनाक बात क्या होगी कि बेटियों की शिक्षा अपने ही घर के हालात से जूझते हुए हाशिये पर चली जाए।

हाल ही में आई गैरसरकारी संगठन 'क्राई' यानी 'चाइल्ड राइट्स ऐंड यू' की रिपोर्ट 'एजुकेटिंग द गर्ल चाइल्ड' के मुताबिक घरेलू जिम्मेदारियां भी बेटियों की शिक्षा में बड़ी बाधा बन रही है। देश के चार हिस्सों से चुने गए चार राज्यों बिहार, आंध्र प्रदेश, गुजरात और हरियाणा से बीस-बीस गांवों के अध्ययन में यह उजागर हुआ कि देश में स्कूल जाने वाली बच्चियों में से छिहत्तर फीसद और स्कूल छोड़ने वाली बच्चियों में से नब्बे फीसद बच्चियां घरेलू कामों में लग जाती हैं। स्कूल छोड़ने वाली हर चार लड़कियों में से एक बच्ची घर के लिए पैसे कमाती है। हर दस में से एक लड़की घर में छोटे बच्चों का खयाल रखती है। नतीजतन, आज भी ऐसी लड़कियों की तादाद काफी है जो मुश्किल से प्राथमिक स्कूल तक ही जा पाती हैं। इस रिपोर्ट के मुताबिक चौदह साल की उम्र से पहले ही दो-तिहाई बच्चियां स्कूल छोड़ देती हैं और आज भी सिर्फ अट्ठावन प्रतिशत बच्चियां उच्च प्राथमिक स्तर तक जा पाती हैं। सवाल यह है कि कम उम्र में ही ऐसी जिम्मेदारियों का बोझ बच्चियों के हिस्से क्यों? आखिर शिक्षित होने और सबल बनने के मोर्चे पर बेटियां कब तक जूझती रहेंगीं? वह भी तब जबकि हमारे देश में स्त्रियों के जीवन से जुड़ी कई समस्याओं की वजह उनका शिक्षित न होना ही रहा है।

शिक्षा, जीवन में बदलाव और बेहतरी का सर्वोत्तम माध्यम है। सोच बदलने से लेकर सजग और सशक्त व्यक्तित्व गढ़ने तक शिक्षा की महती भूमिका है। भारत जैसे देश में तो महिलाओं की शिक्षा के आंकड़ों की अहमियत और बढ़ जाती है, जहां आधी आबादी को शिक्षित होने का बुनियादी हक पाने के लिए भी अनगिनत उलझनों से जूझना पड़ता है। स्कूल जाने और उच्च शिक्षा पाने तक, कितने ही पड़ावों पर भेदभाव भरा व्यवहार बच्चियों के हिस्से आता है। घर-परिवार के कामकाज का दायित्व भी उनकी पढ़ाई में बड़ी रुकावट बनता है। घर की कमजोर आर्थिक स्थिति, सामाजिक असुरक्षा के चलते कम उम्र में शादी या छोटे भाई-बहनों की संभाल-देखभाल। ऐसे कई आम कारण बेटियों की शिक्षा की खास अड़चन बन जाते हैं।

हमारे सामाजिक ढांचे में आज भी ऐसी जिम्मेदारियां और बंधन बिना सोचे-समझे बेटियों के हिस्से में डाल दिए जाते हैं। घर के कमजोर आर्थिक हालात के कारण सबसे पहले बेटियों की ही पढ़ाई छूटती है। 'क्राई' के अध्ययन के मुताबिक इक्कीस फीसद बच्चियों को पैसे की कमी की वजह से स्कूल छोड़ना पड़ा। गौरतलब है कि हमारे यहां स्कूल जाने वाली बच्चियों में से 49.4 फीसद उन परिवारों से हैं, जिनकी आय पांच हजार रुपए प्रति माह या उससे कम है। ऐसे घरों में अधिकतर अभिभावक मेहनत-मजदूरी या खेती कर परिवार चलाते हैं। इसीलिए बेटियों को छोटे भाई-बहनों की देखभाल और दूसरे घरेलू कामों में लगा देते हैं।

यह रिपोर्ट बताती है कि गुजरात में स्कूल छोड़ने वाली बच्चियों में से 95.4 प्रतिशत, हरियाणा में 81.7, आंध्र प्रदेश में 72.7 और बिहार में 60 फीसदी अभिभावक बच्चियों को घर के कामों में व्यस्त कर देते हैं। यही नहीं, देश भर में स्कूल छोड़ने वाली लड़कियों में से 55.1 प्रतिशत लड़कियों को छोटे भाई-बहनों का खयाल रखने के लिए स्कूल से दूरी बनानी पड़ती है। आंध्र प्रदेश में 69.7 फीसदी, गुजरात में 67.7 प्रतिशत, हरियाणा में 33.3 प्रतिशत और बिहार में 31.5 प्रतिशत लड़कियां इसी वजह से स्कूल छोड़ देती हैं। बचपन में ही बच्चों को संभालने का दायित्व उन्हें घर की चारदिवारी तक समेट देता है। यह वाकई चिंतनीय है कि घर-परिवार के ऐसे हालात बेटियों को स्कूल से दूर कर देते हैं, जिनकी जिम्मेदारी उनके हिस्से होनी ही नहीं चाहिए।

दुखद है कि पारिवारिक हालात के साथ ही हमारा सामाजिक ढांचा भी बेटियों की शिक्षा में बाधा बनता है। जो परिवार आर्थिक रूप से सक्षम होते हैं, वे भी कहीं न कहीं बेटियों की पढ़ाई से ज्यादा उनके विवाह को लेकर चिंतित रहते हैं। गांवों-कस्बों में आज भी सामाजिक रूप से लड़कियों पर जल्द से जल्द घर बसाने का दबाव होता है। खासकर गरीब परिवारों के अभिभावक उनकी शादी कर एक बड़ी जिम्मेदारी से मुक्त होने के बारे में सोचते हैं। 'क्राई' की इस रिपोर्ट में बिहार के आंकड़ों के मुताबिक स्कूल छोड़ने वाली सभी बच्चियों में से बीस फीसद बच्चियों के माता-पिता उनकी शादी जल्दी कराने को इच्छुक हैं। साथ ही गुजरात में 3.9, आंध्र प्रदेश में

21.2 और हरियाणा में 11.7 प्रतिशत माता-पिता बच्चियों की शादी करना चाहते हैं।

कहना गलत नहीं होगा कि इसकी एक बड़ी वजह असुरक्षा के हालात भी हैं। दूरदराज के इलाकों में स्कूल आती-जाती लड़कियों पर अभद्र टिप्पणियां, उनसे छेड़छाड़ और बलात्कार की घटनाएं भी आए दिन होती रहती हैं। ऐसे मामले भी सामने आए हैं, जिनमें बच्चियों के खिलाफ बर्बर अपराध हुए। इन घटनाओं की बड़ी वजह घर से स्कूल तक पहुंचने के लिए यातायात की उचित और सुरक्षित व्यवस्था का नहीं होना है। देश भर में स्कूल छोड़ने वाली लड़कियों में से 25.2 फीसदी लड़कियां स्कूल दूर होने की वजह से स्कूल छोड़ देती हैं। कोई अनहोनी होने का भय लड़कियों के स्कूल तक पहुंचने की हिम्मत और जरूरत पर भारी पड़ता है। सामाजिक असुरक्षा और भय के चलते कम उम्र में ही उन्हें शादी के बंधन में बांध दिया जाता है।

नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे- 4 (2015-16) के मुताबिक आज भी देश में बाल विवाह की औसत दर 11.9 फीसदी है। यह एक कड़वा सच है कि असुरक्षा का भय और सामाजिक दबाव अभिभावकों का भी मनोबल तोड़ता है, जिसके चलते परिवेश में पहले से ही मौजूद दोयम दर्जे की सोच को और बढ़ावा मिलता है। नतीजतन, बेटियों की शिक्षा की राह और कठिन हो जाती है। जबकि पढ़-लिख कर अपने सपने साकार करने का अधिकार मिलना बेटियों के भावी जीवन की बेहतरी के लिए ही नहीं, संपूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए भी जरूरी है। शिक्षित बेटियां अपने अधिकारों को लेकर भी सजग बन पाती हैं। बतौर नागरिक एक चेतनासंपन्न इंसान बनती हैं। इसमें कोई दो राय ही नहीं कि महिलाओं के जीवन का दंश रही कुरीतियों और भेदभाव का स्थायी हल उनका शिक्षित होना ही है। एक सर्वश्रेष्ठ समाज तब बनता है, जब मांएं पढ़ी-लिखी, जागरूक और समझदार होती हैं।

हालांकि बीते कुछ बरसों में महिला साक्षरता के आंकड़े भी बदले हैं और उच्च शिक्षा में उनकी भागीदारी का ग्राफ भी बढ़ा है। हर क्षेत्र में शिक्षित और आत्मनिर्भर बेटियों के बढ़ते आंकड़ों ने देश की अर्थव्यवस्था में भी उनकी भूमिका और भागीदारी सुनिश्चित की है। सुखद है कि मौजूदा समय में बेटियां शिक्षित हो रही हैं और आत्मनिर्भर भी। तकरीबन हर क्षेत्र में अपना दखल भी रखती हैं। पर बुनियादी स्तर पर उन्हें आज भी ऐसे कई मोर्चों पर लड़ाई लड़नी पड़ रही है, जो सामाजिक-पारिवारिक ढांचे में बदलाव आए बिना नहीं जीती जा सकती। इस बदलाव में हर परिवार की भूमिका तो अहम है ही, समग्र रूप से समाज की भागीदारी भी जरूरी है। इससे ज्यादा अफसोसनाक बात क्या होगी कि बेटियों की शिक्षा अपने ही घर के हालात से जूझते हुए हाशिये पर चली जाए। बड़ों की जिम्मेदारियां निभाने के फेर में उन्हें शिक्षित होकर सम्मान और पहचान पाने का हक भी न मिले, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने का सपना पूरा न हो पाए। इसीलिए बच्चियों के सर्वांगीण विकास के लिए जरूरी है कि घर के भीतर उन्हें ऐसे दायित्वों से मुक्त रखा जाए जो उनकी जिम्मेदारी नहीं है। साथ ही समाज में भी समानता और सुरक्षा का माहौल बने, शैक्षणिक संस्थाओं में बुनियादी सुविधाओं का इंतजाम किया जाए, ताकि बच्चियों की शिक्षा में कोई रुकावट न आए। गौरतलब है कि महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक भागीदारी के पैमानों पर भारत आज भी काफी पीछे है। जबकि बेटियों का शिक्षित और आत्मनिर्भर बनना समूचे समाज की दशा और दिशा तय करता है।

त्योहार का जीवन

अनीता यादव

दुनिया मेरे आगे

एक वक्त था जब विद्यालय में प्राथमिक स्तर पर कक्षाओं में दिवाली विषय पर एक कविता पढ़ाई जाती थी- 'दीप जलाओ दीप जलाओ, आज दिवाली रे...'। इस कविता में बच्चे की सदिच्छा है कि दिवाली के शुभ अवसर को खेल-खिलौना, दीप जलाने, नाचने-गाने, पटाखे चलाने, साफ-सफाई, नए कपड़े पहनने और पूजा करके मनाया जाए! हमने भी पाठ्यक्रम के तहत यह कविता पढ़ी और इसमें जिन कार्यों का वर्णन है, वे सब किए भी। दिवाली से महीने भर पहले ही घर भर में सफाई किसी अभियान की तरह शुरू हो जाती थी। जिन स्थानों को रोजमर्रा की सफाई में साफ नहीं करते, वे सफाई का मुख्य केंद्र बिंदु होते। दिवाली से हफ्तों पहले ही मां घर में तैयार घी, दूध से मिठाई बनाना शुरू कर देती। ये मिठाइयां बाद में भी खाई जाती रहती थीं।

आज वक्त पूरी तरह बदल चुका है। आज दिवाली मनाई नहीं, बल्कि 'सेलिब्रेट' की जाती हैं। ग्लोबल हो चुके हमारे त्योहारों का स्वरूप एकदम परिवर्तित हो चुका है। अब हमारे पास पैसा तो है, पर वक्त नहीं। महानगरों को छोड़ भी दें तो गांव तक में घर पर मिठाई बनाने की परंपरा लुप्तप्राय हो चुकी। शहर से बनी-बनाई मिठाइयां मंगा ली जाती हैं। यानी हर त्योहार बाजार भरोसे रख छोड़ा है। यह बाजार अपनी ऊपरी चमक-दमक से न केवल हमारी जेब पर डाका डालता है, बल्कि मिठाइयों के नाम पर जहर भी परोस रहा है। मिठाई बांटने के रूप में यह जहर हम हंसी-खुशी एक-दूसरे के घर पहुंचा भी रहे हैं। समाज के एक वर्ग विशेष में भले ही मिठाई की जगह ड्राइ फ्रूट्स यानी सूखे फलों ने ले ली है, लेकिन मध्य वर्ग, निम्न मध्यवर्ग और निम्न वर्ग में अभी यह चलन अपने विकटतम रूप में विद्यमान है।

आज के ज्यादातर त्योहार वास्तव में मिलावटखोरों की पौ-बारह करने वाले ही सिद्ध होते हैं। सामान्य दिनों की अपेक्षा दूध और मावे की मिलावट इन दिनों चरम पर होती है। विभिन्न शहरों में प्रशासन की ओर से हर वर्ष नकली घी, दूध और मावा भारी मात्रा में पकड़ा जाता है। इसके बावजूद कोई बड़ी कार्रवाई या दंड विधान के अभाव में यह निरंतर चलता रहता है। त्योहारों पर दूध, घी सरीखे खाद्य पदार्थों की खपत बढ़ने से इनकी कमी हो जाती है, जिसे पूरा करने के लिए मिलावट का सहारा लिया जाता है। इन दिनों डेयरियों में नकली दूध, घी बनाने का कारोबार अपने चरम पर होता है। स्वास्थ्य के साथ समझौता भले करना पड़े, लेकिन मुनाफे से कोई समझौता न करना व्यक्ति की बाजार आधारित विशेषता है।

बचपन में हम जिन पटाखों से अपनी खुशी जाहिर करते थे, वे छोटे-छोटे टिक्की पटाखे होते थे जो न ज्यादा शोर करते थे, न प्रदूषण। आज पटाखों का भरा-पूरा बाजार है। इनकी ऐसी ऐसी किस्में हैं जो पटाखा नहीं, बम का आभास देते है। बड़े और भारी बमनुमा पटाखे और उन्हें देर रात तक फोड़ने की कुव्वत लोगों की सामाजिक हैसियत को आंकने का मापदंड हो चुकी है। पर्यावरण को देखते हुए सरकार द्वारा पटाखे चलाने की समय-सीमा निश्चित करने के बावजूद लोग बाज नहीं आते। नतीजतन, अगली सुबह गली-चौराहों पर पटाखों से उत्पन्न कूड़े को देख लगता है कि हम घूरे पर बैठे हैं। दिवाली पर चलाए पटाखों से निकले धुएं की परत आसमान में इस कदर छा जाती है कि कई बार सूरज भी छिप गया लगता है। पटाखों से उत्सर्जित यह प्रदूषण मनुष्य से लेकर जानवरों तक के लिए खतरनाक होता है। देश की राजधानी की हालत हर साल बद से बदतर होती जा रही है। स्थिति से पार पाने के लिए प्रशासन भले ही परिवहन संबंधी 'सम-विषम' सरीखे नियम लागू कर दे, कृत्रिम बारिश की सोचे, लेकिन ये सब नाकाफी साबित होते हैं।

इन दिनों सुबह चार बजे की हवा भी जहरीली रहती है। प्रशासन की ओर से बहुत जरूरी न होने पर घर से बाहर न निकलने के चेतावनी जारी किया जाना बताता है कि स्थिति बेहद खतरनाक है। क्या आज समय की जरूरत नहीं कि त्योहारों के मनाने के तरीकों में फिर बदलाव हो? बदलाव को सकारात्मक रूप में लेने की जरूरत समय की पुकार है, न कि हम इसे अपनी सांस्कृतिक स्वतंत्रता और मूल्यों पर हमला करार दें। मानव जाति बचेगी, तभी मूल्यों के बचने की चिंता कर पाएगी!

बचपन में नए-नए कपड़े पहन कर जो खुशी दिवाली के दिन हर बच्चे के चेहरे पर दिखती थी, उस खुशी से आज का बच्चा महरूम है। वह ऐसा समय था, जब त्योहार पर ही नए कपड़े सिलवाए जाते थे या किसी शादी-ब्याह में। आज नए कपड़े खरीदने के लिए हम त्योहार या विवाह आदि के मोहताज नहीं। अब अक्सर नए ब्रांड के कपड़े खरीदते और पहनते हैं। क्या अब वक्त नहीं आ गया कि हमें अपनी जीवनशैली में बदलाव करना चाहिए? त्योहार हमें मानसिक खुशी देने और शारीरिक स्वास्थ्य को बेहतर करने के लिए होने चाहिए, न कि बीमार करने के लिए। हमारा कर्तव्य है कि हम मानव जाति की खुशी और स्वास्थ्य के लिए पर्यावरण को बचाएं, ताकि आने वाली पीढ़ी को ही नहीं, वर्तमान पीढ़ी को भी सुकून मिल सके। थोड़ी जमीन बचाएं, थोड़ा आसमान!

अंतर्मन का दीप

पर्व खुशियों का वह गुलदस्ता है, जिसकी महक से मानवीय जनजीवन गुलजार तो होता ही है, साथ ही सामाजिक समरसता, स्वच्छता, रिश्तों की अहमियत, अपनों का साथ, दुआ और मिट्टी की सोंधी खुशबू भी जीवन-रूपी बगीचे में एक नया उल्लास और रंग भरता है। उसी का एक सुंदर नमूना दीपों का त्योहार दिवाली है। दिवाली का दीप अंतर्मन का वह दीप है जो मन, विचार और अंतःकरण को प्रकाशित, विरेचित और विश्लेषित कर सोना-सा कंचन बनाता है। प्रकाश का यह पर्व संयुक्त परिवार को एक तरफ तो गूढ़ता प्रदान करता है तो वहीं दूर प्रदेशों में प्रवासी हुए बेटों और पतियों को घर बुला कर उन रिश्तों में फिर मिठास भरता है।

आज जब स्वार्थ, ईर्ष्या, लोभ, मोह, तार्किक जीवन, भावनात्मक पतन, एकाकी जीवन, वासनामय मानसिकता से ग्रसित मानवीय ग्रंथि में हृदय-पक्ष शून्य हो गया है। उस दौर में यह पर्व एकता, समरसता, मधुरता, सहयोग और प्रकाशित वृत्ति का संदेश ले कर आता है। पर्व केवल धर्म विषयक दृष्टिकोण ही नहीं प्रदान करता है, बल्कि यह प्रकृति और मानव के अंतः और बाह्य संबंधों और साहचर्य में नजदीकी और कलुष को मिटा कर स्वच्छ वातावरण का निर्माण करने की सोच भी प्रदान करता है।

इसलिए खुशियों के इस माहौल में ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, जिससे दूसरों को नुकसान पहुंचे। पटाखों का कम से कम इस्तेमाल कर प्रदूषण जैसी समस्याओं से निजात पाया जा सकता है तो भोजन का अपव्यय रोक कर गरीबों का पेट भरा जा सकता है। मिठाई में मिलावट के जहर से बचें, स्वच्छता का खासा खयाल रखें, मिट्टी के दीये जला कर घरेलू और लघु उद्योगों को बढ़ावा दें और बच्चों के प्रति सतर्कता बरत कर इस दिवाली को और भी प्रकाशमय बनाया जा सकता है। दीपों के इस त्योहार में हर व्यक्ति अपने अंतर्मन का सकरात्मक दीपक जलाए तो इस त्योहार का असल औचित्य गुंजायमान होता दिखाई देगा।

● *सत्यम भारती, जेएनयू, नई दिल्ली*

जनता की कराह

हरियाणा, महाराष्ट्र विधानसभा के लिए और देश भर में हुए उपचुनावों के परिणाम में जनता की कराह सुनी जा सकती है। हरियाणा में भाजपा के बढ़-चढ़ कर किए गए दावे की हवा निकल गई और सत्ता के लिए अब वह संघर्ष में है। महाराष्ट्र में ग्राफ में काफी गिरावट आ गई। हालांकि शिवसेना के साथ बहुमत मिल गई, लेकिन शिवसेना की पैंतरा देखना अभी बाकी है। मोदी सरकार की राष्ट्रवाद की सवारी कैसे धीमी हो गई, यह शोचनीय है।

बिहार में पांच विधानसभा के उपचुनाव में एनडीए मात्र एक सीट हारते-हारते जीती। महंगाई, मंदी, बेरोजगारी, अपराध के काले साए की धुंध चारों तरफ दिखाई पड़ी। दरौंदा से भाजपा के निर्दलीय का जीतना जदयू को जख्म दे गया, जैसे नाथनगर में राजद को हम ने जख्म दिया। सत्ता पक्ष को अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करना होगा तो विपक्ष को रणनीति बनाने की जरूरत है। सवाल है कि 'मोदी-मैजिक' फीका क्यों पड़ गया? 'फिर से नीतीशे कुमार...' पर ग्रहण क्यों लगता नजर आ रहा है? कहीं देश की मंदी एनडीए को 'मंदी' में न डाल दे!

● *प्रसिद्ध यादव, बाबूचक, पटना*

पराली का प्रदूषण

वैश्विक भुखमरी सूचकांक में भारत 117 देशों में से 102 नंबर पर है। दुनिया में प्रतिदिन चौबीस हजार लोग भूख से मरते हैं, जिसमें से एक तिहाई लोग भारतीय होते हैं। वहीं एक तरह देखें तो पिछले दस सालों में लगभग दस लाख टन अनाज बेकार हो गया है, जबकि इस अनाज से छह लाख लोगों को दस साल के लिए भोजन मिल सकता था। इन दिनों में एक और बहुत बड़ी समस्या देखी जा रही है! एक तरफ तो पराली जलाने से प्रदूषण बढ़ रहा है, वहीं बड़ी तादाद संख्याओं में पशु आवारा भटक रहे हैं। उनके खाने के लिए चारा उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। इसे न जाने कितने पशु प्रतिदिन भूख से मर जाते है। अगर पराली का चारे के रूप में भी उपयोग में लिया जाए तो इसे पशुओं के लिए चारा उपलब्ध करवाया जा सकता है। इससे किसानों की आय में भी वृद्धि होगी और इसे जलाने से हो रहे प्रदूषण से भी निजात मिलेगी।

● *अनिल गोदारा, बीएचयू, वाराणसी*

मिट्टी के दीये

दीपों के बगैर दिवाली की कल्पना नहीं की जा सकती है। दीये तो आज भी खरीदे जा रहे हैं, पर इन दीयों में मिट्टी की खुशबू नहीं है, बाती नहीं है और तेल की धारा भी नहीं है। है तो बस प्लास्टिक का बिल्कुल दीये जैसा ढांचा। कांच का बल्ब और प्लास्टिक की ही बिजली की डोरी। आधुनिक जमाने के ये दीये इलेक्ट्रॉनिक दीये कहलाते हैं। त्योहार हमारी सांस्कृतिक चेतना का विकास करते हैं, हमारी भावनाओं को बल प्रदान करते हैं और भावनाएं ही मनुष्य को सजीव बनाती हैं। मिट्टी के दीये में हिलती हुई बाती की लौ सजीव होने का अहसास कराती है। यह बात इलेक्ट्रॉनिक दीयों में कहां! किसी कवि ने लिखा है- 'दीप जलते रहें, जगमगाते रहें/ जिंदगी में सभी मुस्कुराते रहें।' पर आज दीप बनाने वाले के ही चेहरे की मुस्कान गायब है, क्योंकि आज मिट्टी के दीयों को खरीदने में लोगों की दिलचस्पी ही नहीं है, जबकि इस पर्व पर महत्त्व मिट्टी के ही दीयों का ही है।

● *अंकित रजक, दतिया, मध्यप्रदेश*

कारोबार के रास्ते

एलओसी व्यापार के निलंबन को भारत और पाकिस्तान के बीच मुद्दों को सुलझाने और व्यापार को मजबूत और अधिक संगठित तरीके से पुनर्जीवित करने के अवसर के रूप में देखा जा सकता है। इससे दोनों देशों के बीच शांति संबंध स्थापित करने की नई राह मिल सकती है। इतिहास की ओर देखेंगे तो 1972 के शिमला समझौता के आधार पर दोनों देशों के रिश्तों को मजबूत स्थिति में लाने के प्रयास किए जा सकते हैं।

गौरतलब है कि 2008 से 2018 तक दोनों देशों के बीच एलओसी के पार 7500 करोड़ रुपए का व्यापार हुआ है, जिसमें डेढ़ लाख से अधिक लोगों को रोजगार के अवसर मिले। यह अब घट कर निम्न स्तर पर आ गया है। अगर यही स्थिति बनी रही तो जनता के बीच असंतोष की भावना उत्पन्न हो सकती है। दोनों देशों को व्यापार के माध्यम से छोटे-छोटे प्रयास के कारण मानवतावादी सुधार करके संबंधों को शांतिपूर्ण बनाना चाहिए।

● *करन कुमार खोईया, ग्वालियर*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com